



विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/84

वर्ष १४ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२८ • भाद्रपद पूर्णिमा [शक] • दि. १०-२-१९८४ • अंक ३

विपश्यना और मार्गदर्शक (२)

(डॉ. मेहरबान भामगारा)

(गतांके क्रमशः)

विपश्यना का अभ्यास

विपश्यनाका अर्थ है कि जैसा प्रतीत होता है वैसा नहीं, पर जो सचमुच जैसा है उसे वैसा ही साक्षीभावसे देखना। गोयन्काजी विपश्यना साधना करते हुए मनको एकाग्र करनेके लिए कोई मंत्र नहीं देते। अपने मनकी आंखोंके सामने कोई काल्पनिक मूर्त लाने नहीं देते। यहाँ तक कि ओ३मका आकार अथवा शब्द भी नहीं आने देते। कल्पनाओंसे अपने आपको बिल्कुल दूर रखना होता है। शरीरके स्तर पर जो सचमुच हो रहा है वस उसे ही सच्चाई के साथ जानना है। जसे कि गोयन्काजी कहते हैं कि सांस सार्वजनीन है उसी प्रकार शरीर पर होनेवाली अनुभूतियाँ भी सार्वजनीन हैं। अगर अपने सांस को और शरीर पर होनेवाली संवेदनाओं को हम साक्षीभावसे देखते हैं तो अपने आपके बारेमें गहराइयोंसे जानने लगते हैं। बड़ा चमत्कारिक प्रभाव होता है जबकि कोई व्यक्ति जीवनमें पहली बार सचमुच शरीर पर होनेवाली विभिन्न संवेदनाओं की साक्षीभावसे अनुभूति करता है। इस साधनामें किसी देवी अथवा देवता का प्रतीक बीचमें आने नहीं देते जो कि साधकको शरीर पर होनेवाली सच्चाइयोंसे विमुख कर दे। लेकिन स्वभाव पलटने आसान नहीं होते। मन अपने मर्कट स्वभावकी वजहसे अनेक प्रकार की कलाबाजियोंके खेल खेलते रहता है। जब लोग विपश्यना साधनाका काम शुरू करते हैं तो उनमें से ७५ प्रतिशत लोग देखते हैं कि उनका ७५ प्रतिशत समय मनकी भटकन में ही गुजर रहा है। लेकिन यदि वे लगनके साथ काम करते जाँय तो स्थिरता आने लगती है। समय लगता है। केवल एक दस दिनका शिविर पर्याप्त नहीं होता। किसी किसी को अच्छी एकाग्रता प्राप्त करनेके लिए कई शिविर लेने होते हैं।

गोयन्काजी कहते हैं कि जब एक नन्हासा पौधा धरतीमेंसे उभरकर ऊपर आता है तो उसकी बहुत सेवा करनी होती है। उसके चारों ओर बाड़ लगाये रखनी होती है उसे ऊपरसे भी ढकना होता है ताकि कोई पशु अथवा पक्षी उसे नष्ट न कर दे। उसे ठीक समय पर आवश्यक पानी, आवश्यक धूप और आवश्यक

धम्म वाणी

स्वागतं न दुरागतं नयिदं दुमन्तितं मम ।

संविभत्तेसु धम्मेषु ये सेट्ठं तदुपागमिं ॥

थेरगाथा - ९.

मेरा यहाँ आना अच्छा ही हुआ, बुरा नहीं हुआ। मुझे जो परमार्थ मिला वह कल्याणकारी ही सिद्ध हुआ। संविभाजित धर्म में यह जो भ्रष्ट है वह मुझे प्राप्त हुआ।

खाद इत्यादि भी देनी होती है। लेकिन बढ़ जाने पर उसके बचाव के लिए किसी बाड़ की जरूरत नहीं होती। सेवाकी जरूरत नहीं होती। वह अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेता है। धरतीमें बहुत गहराइयों तक उसकी जड़ें चली जाती हैं जहाँ से उसे पानी मिल जाता है। हमें सींचनेकी जरूरत नहीं। याने हमारी सेवा-बिना ही वह अपनी सभी जरूरतें खुद पूरी कर लेता है। इसी प्रकार नए-नए साधकको अपनी साधनाकी बहुत देखभाल करनी होती है। अन्यथा नष्ट होनेके अनेक कारण उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए चाहते हैं कि मौन रहें और बहिर्मुखी कम रहें। अपना ध्यान अधिक से अधिक भीतर ही रखें। इसीलिए पढ़ने-लिखने पर रोक लगाते हैं। सारी दुनियासे संबंध काट देते हैं। कोई रेडियो नहीं सुन सकते, टीवी नहीं देख सकते, अखबार नहीं पढ़ सकते, पत्र-व्यवहार नहीं कर सकते। यह सब केवल इस नन्हेसे बिरबे को सबल बनानेके लिए। जब ध्यान सुदृढ़ हो जाय तब तो तुम भीड़के बीचमें भी रह सकते हो। बाहरका कोई कोलाहल तुम्हारे ध्यानमें बाधा नहीं पैदा करेगा। जैसे कि बहुत बड़ा घृत्न बड़े-बड़े तूफानोंका सामना कर लेता है।

गोयन्काजीके कहनेके मुताबिक धर्म पालन करनेके लिए है, धारण करने के लिए है। विपश्यना इसे धारण करनेकी विधि है। वह जो पंडे-पुजारियों द्वारा अथवा घर के बुजुर्गों द्वारा कर्मकांड प्राप्त हुए हैं वह आवश्यक नहीं हैं। न किसी प्रार्थनाकी जरूरत है। भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसामसीह अथवा अन्य महापुरुषोंकी स्तुतियाँ गानेकी जरूरत नहीं। उनके सद्गुण हमारे हृदयमें श्रद्धापूर्वक अवश्य समाए रहें। परन्तु यह महापुरुष अब नहीं रहे।

बीती बात है। हमें वर्तमानमें रहना है। वर्तमानका जो धर्म है, जो सच्चाई है उसीमें जीना है। आज तो ये सारे महापुरुष हमारे लिए कल्पना मात्र हैं। रामायण, महाभारत, बाईबल अथवा धम्मपदके काल्पनिक पात्र हैं। धर्म तो इस क्षणकी वास्तविकतासे हमें सम्बद्ध करता है, कल्पनाओंसे नहीं। जो “यह क्षण” है हमें उसका सामना करना है, जो ‘था’ उसकी कल्पना नहीं।

सार्वजनीन रोग

गोयन्काजी समझाते हैं कि जिस प्रकार हमारे शरीरके रोगोंका और उनके उपचारके लिए दी गयी औषधियोंका सांप्रदायिक मान्यताओंसे कोई लेन-देन नहीं होता उसी प्रकार धर्म भी सार्वजनीन होता है। इसका संप्रदायसे कोई लेन-देन नहीं होता। इसी को आगे समझाते हुए वे कहते हैं कि मलेरिया एक रोग है। यह किसी को भी हो सकता है। हिन्दू हो, मुस्लिम हो, सिख हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। न हिन्दू मलेरिया भिन्न होती है, न मुस्लिम मलेरिया। और इसी प्रकार इसको दूर करनेके लिए जो कुनेनकी दवा देते हैं वह भी न हिन्दू होती है, न मुस्लिम। न हिन्दू कुनेन भिन्न होती है न मुस्लिम कुनेन।

इसी प्रकार सभी लोग एक जैसे मानसिक रोगोंसे पीड़ित हैं। राग-द्वेष के रोगोंसे। चूंकि यह रोग सार्वजनीन है इसलिए इसका इलाज भी सार्वजनीन होना चाहिए। हर व्यक्तिको अपने मानसिक भावावेशोंसे मुक्त होनेके लिए धर्म की दवा चाहिए। सभी को साक्षीभाव पुष्ट करनेका अभ्यास चाहिए। इस बदलते संसारको साक्षीकी तरह जानते रहना सीखें। और बिना प्रतिक्रिया किए हमें आरंभ अपने सांससे करना चाहिए। उसे साक्षीभावसे देखें और फिर शरीर पर होनेवाली संवेदनाओंको साक्षीभावसे देखें। ऐसा अभ्यास करते-करते स्वतः यह क्षमता आने लगेगी कि हमारे भीतर जागे हुए क्रोध को भी हम साक्षीभावसे देख सकेंगे। वासनाको, ईर्ष्याको, लोभको, आसक्तिको भी देख सकेंगे। ये सारे विकार हमारे सिर पर सवार होकर हमें अभिभूत नहीं कर पायेंगे। इसी प्रकार हमारे इर्द गिर्द होनेवाली स्थितियोंको साक्षीभावसे देख सकेंगे। उनकी वजहसे भीतर प्रतिक्रियाओंका भावावेश नहीं जगने देंगे। साक्षीभावसे देखेंगे तो पायेंगे कि वे आती हैं और चली जाती हैं। अनित्य हैं। हमें स्पर्श नहीं कर पातीं। हम उनसे अस्पृश्य रह जाते हैं। सही मानेमें “अस्पृश्य”, सही मानेमें “हरिजन”।

इसका मतलब यह नहीं कि हम अपने इर्द-गिर्द वस्तुओं और व्यक्तियोंमें जरा भी रुचि नहीं लेंगे। इसका मतलब यह नहीं कि विपरीत परिस्थितियोंमें उलझे हुए किसी दुखियारे व्यक्तिको हम जरा भी सहायता नहीं प्रदान करेंगे। वस्तुतः विपश्यनाके अभ्यास द्वारा हममें इतनी गहरी कष्टा जागेगी कि जिस किसीको सहायता देनी आवश्यक होगी उसे सहायता देनेके लिए तत्पर हो ही जायेंगे। हम जीना सीखेंगे। और वह भी किसी पर एहसान करनेका भाव रखते हुए नहीं। हमारे निर्णय तत्काल होंगे। लेकिन प्रतिक्रिया के नहीं होंगे। सही क्रिया के होंगे। शुद्ध कर्म। हम यह महसूस करने लगेगे कि धर्म जीवन जीने के लिए है। धर्म केवल कहनेके लिए नहीं, सुननेके लिए नहीं, पढ़ने के लिए नहीं। धर्म जीनेके

लिए है। धर्म का जीवन जीनेका अभ्यास शुरू करें तो जीवन बदलने लगेगा। जीवनके इस बदलावमें समय थोड़ा भी लग सकता है, अधिक भी। गोयन्काजीके कहनेके मुताबिक यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम जीवनमें कितनी विपश्यना करते हैं और कितना कड़ा परिश्रम करते हैं? ऐसा मानकर नहीं चलना चाहिए कि तुरंत हमारे जीवन में सारी प्रतिक्रियाएँ समाप्त हो जायेंगी। प्रतिक्रियाएँ जागेंगी, पर धीरे जागेंगी। त्वरित प्रतिक्रिया करनेसे छुटकारा होने लगेगा। प्रतिक्रियाएँ मन्द होंगी। लघु-जीवी होंगी; दीर्घजीवी नहीं। धीरे धीरे ऐसी अवस्था पर पहुंचेंगे जहाँ प्रतिक्रिया तत्क्षण समाप्त हो जायेगी, ऐसे ही जैसे कि पानी पर खैची हुई लकीर। जबकि पहले यह हालत थी कि प्रतिक्रिया चट्टान पर छेनी और हथौड़ेसे खैची हुई लकीरोंकी तरह बरसों हमें प्रभावित करती रहती थी।

शल्य क्रिया

गोयन्काजी विपश्यना पद्धतिको मानसकी शल्य-क्रिया कहते हैं। जिस प्रकार शरीरकी शल्य क्रिया करवाई जाय तो शरीरको आपरेशन-थियेटरमें ही रखना होता है, उसी प्रकार मानसकी शल्य क्रिया के लिए मनको एक स्थान पर रखकर विपश्यनाकी छूरी द्वारा उसका भेदन करना होता है। मन इधर-उधर भटकता रहे तो शल्यक्रिया कैसे होगी ?

गोयन्काजी समझाते हैं कि धर्म एक प्रबुद्ध व्यक्तिका सहज स्वभाव होता है जहाँ कि राग, द्वेष और मोह से नितांत विमुक्ति रहती है। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए जो साधन है वह है शील और समाधि तथा विपश्यनामयी प्रज्ञा। शिविरके दैनिक सायंकालीन प्रवचनोंमें शील, समाधि, प्रज्ञा की गहराई से विवेचना करते हैं। उदाहरण स्वरूप जब वे अहिंसा की बात करते हैं तो समझाते हैं कि ऊपर ऊपर से अहिंसा का प्रदर्शन करनेवाला व्यक्ति भी भीतर किस प्रकार विनाशात्मक वृत्तियाँ संजोए हुए है। ऐसा व्यक्ति बड़े स्थूल स्तर पर भले अहिंसक हो, पर सूक्ष्म स्तर पर तो हिंसक ही है। वह बार बार इस बात पर बल देते हैं कि विपश्यना अभ्यास में उतरनी चाहिए। केवल प्रवचनोंसे कुछ नहीं होता। यहाँ तक कि उनके अपने प्रवचनोंसे भी कोई लाभ नहीं होगा; यदि उन्हें अभ्यास में न उतारा जाय ! धार्मिक प्रवचनोंको सुनने मात्रसे यह धोखा होने लगता है कि हम धार्मिक बन रहे हैं। जबकि वस्तुतः धार्मिक हैं नहीं। अधिकांश लोगोंके लिए सत्संग केवल थोड़ी देरका मन-बहलाव है। जरा ऊंची कोटिका मनोरंजन है। उससे कोई स्थाई लाभ मिलता नहीं। प्रवचन देनेवाला व्यक्ति स्वयं सत्यदर्शी नहीं। उसके पास वक्तृत्वकी बहुत अच्छी कला हो सकती है जो कि श्रोताओंका दिल हिला दे। उसके पास एक मोहक वाणी हो सकती है अथवा शास्त्रोंका गहन अध्ययन हो सकता है और समय समय पर उसमें से उद्धरण दे सकने की क्षमता हो सकती है। वह अच्छा पंडित हो सकता है। लेकिन केवल कह लेने व सुन लेनेसे तो कुछ लाभ नहीं होता। जो कुछ लाभ होता है वह करनेसे ही होता है। धर्म धारण करना होगा। धारण किया हुआ धर्म हमारे लिए कल्याणका कारण होता है।

रामायण की कथा सुनकर हमारी आँखोंसे आँसू बह सकते हैं लेकिन उससे हम राम के गुण नहीं हासिल करें तो सुनना निकम्मा हुआ। और धारण करनेके लिए साधनाकी आवश्यकता होती है। सजग रहनेका जीवन, शीलवान रहनेका जीवन, परमार्थपूर्ण प्रज्ञासे भरा हुआ जीवन। गौयन्काजी शील, समाधि और प्रज्ञाको गहन रूपसे महत्व देते हैं। लेकिन उनके अभ्यासके लिए ध्यान करना अनिवार्य बताते हैं।

इस आधुनिक संतके शब्दों पर गंभीर चिंतन करते हुए मैंने हिमालयसे विदाई ली। यह बात मुझे निश्चित रूपसे समझमें आ गयी कि आज मानव जातिको चाहे जैसा रोग लगा हो, उसकी एक मात्र दवा साधना है। वस्तुतः यही एक मात्र उपचार है।

साधकों से समालाप (३)

(डॉ. मेहरबान भामगारा)

(गतांके क्रमशः)

श्रीमती मंजु नारायण ने कहा, मुझे हमेशा सिर-दर्द रहता था। अब उससे सर्वथा मुक्ति मिली। इसके अतिरिक्त थोड़ा सा भी काम करूं तो मेरे कंधे में दर्द शुरू हो जाता था। विपश्यनाके शिविरोंमें मैंने देखा कि जैसे वहाँ कुछ पिघल सा रहा हो।”

वेस्ट जर्मनीकी सुश्री माया पेबेट रेनेकेने विपश्यनाको बहुत उत्साहसे ग्रहण किया है। यह उसका चौथा शिविर है। उसने कहा, “हर बार मुझे बिल्कुल भिन्न प्रकारकी अनुभूति हुई है। पहली बार मुझे घुटनोंमें दर्द हुआ और सारे शरीर में पीड़ाएँ रहीं। उस शिविरमें मेरे लिए आँख बंद करना भी मुश्किल हो गया था। और मन तो बहुत भटक ही रहा था। लेकिन शिविर समापन होते-होते मैंने देखा सारे शरीरमें अन्य संवेदनाएँ प्रकट होने लगी हैं। लेकिन दूसरे शिविरमें मैंने देखा कि कहीं कोई संवेदना नहीं है। यह शायद इसलिए हुआ कि उस समय मेरी समाधि बहुत दुर्बल थी। तीसरा शिविर जो हैदराबादमें लिया वह अपेक्षाकृत अच्छा था। एकाग्रता अच्छी हुई और संवेदनाएँ सर्वत्र महसूस होने लगी। अब इस चौथे शिविरमें मुझे महसूस हुआ कि मैं अपनी समस्त पीड़ाओंसे पूर्णतया मुक्त हो गयी हूँ। पहले शिविरमें मैंने अपने भूतकालको देखना शुरू किया था। इस साधना द्वारा मुझे अपने ईर्ष्यालु स्वभावसे मुक्ति पानेमें सहायता मिली। मेरे चारों शिविर श्री गौयन्काजीके साथ ही संपन्न हुए।”

बारसिलोना, स्पेनकी सैंडीन फ्रांसिसको एक दंत्य चिकित्सक है। यह दूसरी बार विपश्यना शिविरमें सम्मिलित हुई थी। उसके शब्द हैं, “इस साधना द्वारा मुझे इतनी गंभीर शांति महसूस हुई जैसी कि मैंने पहले कभी नहीं महसूस की थी। इससे मेरी सजगता बहुत बढ़ी है। गौयन्काजीका प्रशिक्षण बहुत पद्धतिपूर्ण है और कुशल है। वह हमें कुशलतापूर्वक क्रमशः पग पग आगे बढ़ाते हैं। कोई इस सरल साधना विधिको न सीख सके, यही बात असंभव लगती है।”

कुमारी यूको मितानी, जापान में पियानो सिखानेकी अध्यापिका है। उसने जापानमें दो और भारतमें दो शिविर लिए हैं। उसने कहा, “वर्षों पहले मैं स्वयं अपने स्वभावको बहुत बुरा मानती थी। मुझमें बहुत गर्व था, घमंड था, स्वार्थ-परायणता थी, संकीर्णता थी। अंग्रेजी भाषाके मेरे शिक्षकने विपश्यना सीखनेकी बात अनेक बार कही। वह दस वर्षों तक इसी प्रकार सोचता रहा, बोलता रहा लेकिन स्वयं भी कभी विपश्यना कर नहीं पाया। अन्ततः जब वह एक शिविरमें शामिल हुआ तो बिल्कुल बदल गया। वह सचमुच एक भद्र व्यक्ति हो गया। इससे मैं बहुत प्रभावित हुई और स्वयं एक शिविरमें शामिल हुई। पहले दिनसे ही मैं शिविरमें बहुत उखड़ी-उखड़ी रही और शिविर छोड़कर भाग जानेको जी चाहता रहा। लेकिन पता नहीं क्यों और कैसे मैं शिविरमें रुकी रही। घर लौटने के बाद देखा और महसूस किया कि मुझमें बहुत परिवर्तन आ गया है। मुझमें बहुत मैत्रीभाव समा गया है। इसके पहले मेरा कोई मित्र ही नहीं था। क्योंकि अपने गर्व-गुमान के कारण मैं किसी से ठीकसे बातें ही नहीं कर पाती थी। अब मैं महसूस करने लगी कि धीरे-धीरे कम अहंकारी होती जा रही हूँ। स्वार्थपरायणता कम होती जा रही है और तब मुझे हर व्यक्ति भला आदमी लगने लगा। मैंने अपने भीतर जो यह कुशल परिवर्तन देखा तो और अधिक शिविर लेकर गहराइयों तक अपने अन्तर्मनमें जो विकार हैं उन्हें निकालनेके लिए कटिबद्ध हो गयी। इस चौथे शिविरके बाद मैंने अपने आपमें बहुत हल्कापन, शांति और प्रश्रुति महसूस की है।”

हिमांचल प्रदेश, चंबा की एक शिशु विशेषज्ञ डॉ. कु. ब्रिज-बाला शर्मा पहले भी एक शिविर ले चुकी है और पिछले ५ वर्षों से नित्य ध्यान करते हुए उसने इस विधि से बहुत लाभ उठाया है। वह कहती है, “यह विधि हमारे शारीरिक और मानसिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्रोंमें भलाई करनेवाली है। बच्चोंको यह अवश्य सिखाई जानी चाहिए। ६ वर्ष के बच्चोंको ही आनापानका प्रशिक्षण दे दिया जाना चाहिए। विपश्यना उसके बाद सिखाई जा सकती है।”

एक रोमन कैथोलिक महिलाने बताया कि दस दिनके शिविरमें प्रत्येक दिन उसकी आँखमें कुछ खराबी आती गयी लेकिन जब शिविर पूरा हुआ तो उसने देखा कि उसकी आँखें बहुत अच्छी हैं। उसे और भी अनेक अनुभूतियाँ हुईं। कहती है एक बार उसने किसी प्रेत प्राणीको प्रत्यक्ष देखा। उसीके शब्दोंमें, “विपश्यना करते हुए बैठक के दौरान मैंने देखा कि मेरे सारे शरीर में एक जीवन ऊर्जा व्याप्त हो गयी है और बड़ी शीघ्रगतिसे प्रवाहमान हो रही है। कभी कभी एक बहुत गर्म ज्वाला सिरके सिरे पर उठती और फिर नीचेकी ओर पांवकी अंगुलियों से निकल जाती। इस प्रकार बार-बार होता रहा। लेकिन जैसा कि गौयन्काजीका आदेश था, हमें हर अवस्थामें समता रखनी है और जो कुछ हो रहा है उसे साक्षीभावसे देखना है। मैं बड़े धीरजके साथ ऐसा ही करती रही। गौयन्काजीका यह कहना बहुत मूल्यवान

लगा कि जो कुछ हो रहा है वह अनित्य ही है। एक बार तो ऐसी अनुभूति हुई कि जैसे मैं बिल्कुल भावाभिभूत हो गयी हूँ और अपने आसनसे उठ भी नहीं सकती हूँ। मेरा सिर चक्कर काट रहा है। आखिरकार मैं जमीन पर सीधी लेट गयी और देखा कि मैं अपने आंखकी पलक भी नहीं हिला सकती। और तभी मेरे कानोंमें ये शब्द सुन पड़े—“साधु, साधु, साधु !”

बम्बई, अपने घर आनेके एक महीने बाद वह कहती है, “घर लौटनेके बाद मैं देखती हूँ कि न केवल मुझमें, बल्कि मेरे पतिमें भी बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। पारिवारिक जीवनके वृफानोंका सामना करने के लिए हमने एक बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त कर ली है और सही मानेमें प्यारका अनुभव करते हैं जो कि इस चित्त-शुद्धि से ही प्राप्त हुआ है। हम दोनों एक बार फिर ऐसे शिविरमें से गुजरना चाहते हैं। अपने पुत्रको भी साथ ले आना चाहते हैं।”

एक गुजराती महिलाको शिविरमें बहुत प्रभावशाली अनुभूतियाँ हुईं। कुछ प्रिय, कुछ अप्रिय। छठे दिन साधनाके बाद अपने निवास-कक्षमें वह जोरोंसे सुबकने लगी। इसके बाद उसे सारे शरीर में तेज गर्मी की अनुभूति होने लगी और वह पसीनेसे लथपथ हो गयी। इस गर्मी के मारे उसे अपने कपड़े उतारने पड़े जबकि मौसम इतना ठंडा था कि लोग उनी कपड़े लादे हुए थे। उसने अपने सारे शरीर में विद्युत-प्रवाहकी अनुभूति की। इसके बाद उसने कई गिलास पानी पिया और बहुत बार लघुशंका करने गयी। पेशाब इतना गर्म था कि जैसे उसे बहुत तेज बुखार हो, लेकिन बुखार उसे बिल्कुल नहीं था। दूसरे दिन उसे कई पेचिस हुईं। इन सारे शारीरिक उपद्रवोंसे गुजर जानेके बाद एकाएक उसे अपने बचपनकी स्मृतियाँ जाग्रत होने लगीं। बहुत स्पष्ट स्मृतियाँ। जब उसे गोयन्काजीके समीप लाया गया तो उसे यों लगा कि जैसे वह पागल हो रही है और इस अवस्थामें घर जाकर अपने परिवारका कैसे सामना करेगी? गोयन्काजीने उसे सान्त्वना दी। “लोग (शेष कार्यक्रमों के अंत में)”

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास

बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७.

की मंगल कामनाओं सहित



दूहा धरम रा

पुण्य जगयां ही धरम सू, होवै मंगल मेल ।
 राग द्वेष री मोह री, - कट ज्यावै बिस बेल ॥१॥
 दुरमन रा दुखड़ा मिटै, सुमन बणै सुख स्रोत ।
 मुकत हुवै मन मैल सू, जगै धरम री ज्योत ॥२॥
 कूडै कडुवै बोल को, सहजां छुटै सुभाव ।
 बाणी निरमल हो उठै, इसो धरम परभाव ॥३॥
 हिंसा चोरी मद्य का, मिट ज्यावै आधार ।
 सदाचार होवै सबल, छुट ज्यावै व्यभिचार ॥४॥
 पल पल होस संभालतां, मन पर लगै लगाम ।
 सावधान छण छण र वै, तो मन हुवै गुलाम ॥५॥
 काया चित्त अनित्य है, अन्तर जगै प्रबोध ।
 इसी प्रबल प्रग्या जगै, होवै दुख निरोध ॥६॥

दाहे धर्म के

बड़े पुण्य से भाग्य से, होय धर्म संयोग ।
 छुट जाएँ भव भोग सब, छुट जाएँ भव रोग ॥१॥
 मंगल गंगा धर्म की, अंग अंग लहराय ।
 जनम जनम के कर्म के, पाप ताप धुल जाँय ॥२॥
 सरिता शीतल शीलकी, वाणी काय समाय ।
 मानव जीवन धन्य हो, मंगल से भर जाय ॥३॥
 जब जब अन्तरज्वारसे, चित विचलित हो जाय ।
 सांस सांस को निरखते, सहज समाधि समाय ॥४॥
 सुरत निरत के बोध से, प्रज्ञा जगे प्रभूत ।
 कर्मों के बंधन कटें, अमृत मिले अकूत ॥५॥
 मैत्री करुणा प्यार से, तन मन पुलकित होय ।
 मानव जीवन सफल हो, सब विध मंगल होय ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
 मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१ • वार्षिक शुल्क रु. १०/- आजीवन शुल्क रु. १००/-

विपश्यना ११ 9/84

पो. र. नं. NS(M) 16/84

प्रेषक :

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
 विपश्यना विश्व विद्यापीठ
 धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
 (नासिक, महाराष्ट्र)

To

Licence No. NS 18
 Licensed to post without pre-payment